एक वेश्या की रामकहानी

एक 'पतिता बहन'

मैं एक वेश्या हूं—कलंकिनी, घृणिता, समाज द्वारा बहिष्कृता तथा विताड़िता। जीवन-भर लांछना तथा अवमानना सहन करना ही मेरे भाग्य में बदा है। चारों ओर से तिरस्कृत होने के कारण मेरी दशा ऐसी हो गई है कि मैं स्वयं अपने-आपको असह्य घृणा की दृष्टि से देखने लगी हूं। अपना जीवन मुझे स्वयं भार मालूम पड़ने लगा है। इसमें संदेह नहीं कि समाज के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नेता, जो पब्लिक प्लेटफार्मों तथा पत्र-पत्रिकाओं में मेरे विनाश का पाठ पढ़ाते हैं, मेरे पास आते हैं, मेरे पैरों की धूल से अपने को कृतार्थ समझते हैं, मेरे अस्थिचर्ममय शरीर के [illegible] से पुलकित हो उठते हैं। पर हाय, मेरे हृदय को, मेरी मूल आत्मा को ठुकराकर वे उसका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करना चाहते। उनके गृहों में मेरे लिए कोई स्थान नहीं है, उनके हृदयों में मेरे लिए तनिक सम्मान नहीं है। मैं केवल उनकी काम-ज्वाला को भड़काने का साधनमात्र हूं। यही सही। मैं भी अपने ऊपर किए गए अमानवीय अत्याचार का बदला लूंगी। उनकी काम-ज्वाला भड़काऊंगी, उनकी पाशविक पिपासा बढ़ाऊंगी, और इसी रूप में उनका सर्वनाश करूंगी।

आप मेरी आत्म-कथा सुनना चाहते हैं? यदि आप पाषाण नहीं हैं तो मेरी इस रामकहानी को न पढ़िए, क्योंकि इसे पढ़ने से किसी भी कोमल प्रकृति के पुरुष का हृदय पिघलकर अविरल धाराओं में बहने लगेगा। मेरी आत्म-कहानी बड़ी हृदयविदारक तथा मर्मभेदी है।

मेरा जन्म एक कायस्थ कुल में हुआ था। अपने माता-पिता की मैं सबसे कनिष्ठ संतान थी। हम कुल मिलाकर पांच बहनें थीं। भाई एक भी नहीं था। पिताजी की पैतृक संपत्ति दो लड़कियों के विवाह में आधी से अधिक समाप्त हो चुकी थी। शेष दो लड़कियों के विवाह की चिंता रात-दिन उनके प्राण सुखा रही थी। ऐसी हालत में, पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि उनपर कैसी बीती होगी जब मेरे जन्म लेने पर उन्होंने देखा कि इस बार भी उनके एक लड़की हुई है, लड़का नहीं! उनके

सिर पर मानो वज्रपात हुआ। मुझे बाद में मालूम हुआ था कि मां मुझे देखकर ऐसी खीझ उठी थीं कि सूतिकागार में ही मेरा गला दबोचकर मार डालने की बात सोचने लगी थीं; पर बाद में उन्हें दया आ गई और जी मसोसकर दुःख और लज्जा के (कन्या को जन्मदान देने से अधिक लज्जा की बात हमारे समाज में और क्या हो सकती थी!) आंसू पीकर रह गईं।

निरंतर दुःख और शोक के दबाव से माता का सत्त्व सब निखर चुका था और उनके शुष्क स्तनों में दूध नहीं रह गया था। गाय और बकरी का दूध अधिक मात्रा में पिलाने के लिए पिताजी के पास पैसा नहीं था। मेरे लालन-पालन में इतने विघ्न होते हुए भी मैं मरी नहीं। यदि मैं उस समय मर जाती तो मेरे बदले निर्यातन कौन सहता? इसलिए कर्मलेख के अनुसार मैं मरी नहीं। लोग कहते हैं कि शैशव ही मनुष्य जीवन में एकमात्र ऐसी अवस्था है जब वह निश्चिंत होकर विशुद्ध आनंद भोग करता है। संभव है, ऐसा होता हो। पर मैं सच कहती हूं, मुझे अपने शैशव-जीवन की स्मृति में भी एक दिन ऐसा याद नहीं आता जिसे मैं सुख का दिन कह सकूं। मुझे यथेष्ट खाद्य नहीं मिलता था, मैं रोती थी, मां मारती थीं, मैं और भी जोर से चिल्लाकर रोने लगती! इस असाधारण परिस्थिति में मेरी बुद्धि बहुत जल्दी सजग हो उठी। पाठकों को विश्वास नहीं होगा, यदि मैं कहूं कि छ वर्ष की अवस्था में मैं माता-पिता के दुःख को बहुत कुछ समझने लगी थी। घर में बात-बात में रात-दिन हाय-हाय मची रहती थी। मेरे दुःखी माता-पिता का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था। मां अब भी मुझे बात-बात में मारा करती थीं, पर मैं अब रोती न थी, नीरव भाव से अपने आंसुओं को पी लेती थी। हमारे मुहल्ले के बालक और बालिकाएं किलकारी मारते हुए मगन-मन होकर खेल-कूद करते थे। ऐसे समय मेरा चित्त कुछ चंचल हो उठता था। पर भीतर मां को नाना चिंताओं से हाय-तोबा मचाते देखकर मेरा जी खेलने को नहीं चाहता था। इन सब बातों का उल्लेख मैं इसलिए कर रही हूं कि मेरे परवर्ती जीवन में जो क्रांति मची थी, इन छोटे-मोटे कारणों से भी मुझे उसके लिए प्रेरणा मिली थी, यद्यपि ये मूल कारण नहीं थे।

बड़ी मुश्किल से पिताजी मुझसे बड़ी शेष दो बहनों का विवाह कर पाए। कहीं से उन्हें ऋण मिल गया था। इधर मैं भी धीरे-धीरे बड़ी होती चली गई और साथ ही मां की मार-फटकार और गालियां भी चुपचाप सहन करती चली गई। मुझे अच्छी तरह याद है कि पिताजी दिन-दिन मेरी चिंता से कैसे घुलते चले जाते थे। कभी-कभी वह सिर को घुटनों के नीचे छिपाकर घंटे-भर से भी अधिक समय इसी अवस्था में बिता देते थे। मुझे अपने ऊपर क्रोध आता था और पिताजी की हालत पर तरस। उस छोटी अवस्था में भी, जब कि मैंने संसार का कोई भी सुख स्वप्न में भी नहीं भोगा था, कभी-कभी आत्महत्या का विचार मेरे मन में उत्पन्न हो जाता था। पर ऐसा संभव न हो सका।

उस समय मेरी अवस्था तेरह वर्ष की थी। पिताजी बीच-बीच में कुछ दिनों के लिए गायब रहते थे और फिर वापस चले आते थे। अंत को एक दिन उन्होंने आकर मां से कहा कि वह मेरे विवाह की बात पक्की कर आए हैं। वर अच्छा है, लखनऊ में एक डॉक्टर की दूकान में कम्पौंडर है। पिताजी आज अपेक्षाकृत प्रसन्न मालूम पड़ते थे। इस प्रसन्नता का कारण मैं कुछ समझ न पाई। मेरे मन में यही प्रश्न जागरित हुआ कि उन्हें विवाह के लिए रुपये कहां से मिले हैं? पर पीछे उनकी प्रसन्नता का कारण भी मालूम हो गया। वर ने दहेज लेने से अस्वीकार कर दिया है। पर क्यों अस्वीकार किया? उस समय इसका कारण मैं कुछ मालूम न कर सकी, पर बाद में सब गुल खिल गया।

मेरे पति की अवस्था पचास के करीब होगी। वह कम्पौंडर थे। एकदम लिड्डी थे। यही समझ में नहीं आता कि कम्पौंडरी उन्होंने कैसे सीख ली! डॉक्टरों के प्रेसक्रिप्शनों में जो-जो दवाइयां जितनी-जितनी मात्रा में लिखी होती थीं, उन्हें ठीक उसी ढंग से देते थे। इस संबंध में कोई भूल-चूक वह कभी नहीं करते थे। पर और सब विषयों में उनकी बुद्धि बिलकुल चौपट थी। मैंने अपने वेश्या-जीवन में इस बात का अनुभव किया है कि काम-वासना सबसे प्रबल या तो सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्तियों में होती है या निरे बुद्धुओं में। बुद्धिमान व्यक्ति इस वासना को पूर्णतः अपने वश में रखते हैं। वे जब गिरते भी हैं तो जान-बूझकर। पर बुद्धुओं की कामोत्तेजना देखकर हंसी भी आती है और दुःख भी होता है। मैंने बाद में सुना था कि मेरे पति महाशय की प्रथम स्त्री पति की निर्बुद्धिता से तंग आकर विष खाकर मर गई थी। उनके मरते ही लोगों ने मेरे पति को बनाना शुरू किया। किसी ने कहा—"चचा, तुम तो अभी बीस साल के जवान मालूम होते हो, दूसरा विवाह क्यों नहीं कर लेते?" कोई बोला—"चचा, तुम्हारे चेहरे की बहार पर लखनऊ की सब नाज़नीनें निसार होंगी। जिसे इशारा करोगे, वही तुम्हारे पास हाजिर होगी, तुम्हें छोड़कर दूसरे से शादी ही नहीं करना चाहेगी। जरा आजमा तो लो!" 'चचा' ने बहुत संभव है, अपने 'चेहरे की बहार' का असर आजमाया भी था; पर सफलता न मिली। वह इसी धुन में रहने लगे कि कहीं से कोई भी लड़की किसी भी कुल की मिल जाय, चाहे वह कैसी ही कुरूपा, कदाकार क्यों न हो, तो उनका बेड़ा पार हो जाय। अंत को मेरे पिताजी ने उनकी तारीफ सुनकर जब उनके निकट मेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया तो वह एकदम सातवें आसमान पर चढ़ गए। कहना नहीं होगा कि ये सब बातें मैंने पीछे दूसरों के मुंह से सुनकर मालूम की थीं।

पिताजी ने मुझे बाध्य होकर एक बूढ़े, निखट्टू, निर्बुद्धि पति के साथ ब्याह दिया—केवल इसी लालच से कि वर ने दहेज के भार से पिताजी को मुक्त कर देने की शर्त की थी! मैं सोच रही थी कि यदि किसी बूढ़े वर से ही मुझे ब्याहना था तो किसी टकेवाले को क्यों नहीं फांस लिया, जिससे वह ऋण के फंदे से छूट जाते?

मैं जानती हूं कि मेरा वह विचार भी अत्यंत नीचतापूर्ण है, पर उस समय मैं यही सोच रही थी कि इससे कम-से-कम मुझे पिताजी की आर्थिक चिंता दूर हो जाने का संतोष तो मिलता! खैर।

मेरे पति हुसैनगंज की एक तंग गली में, जहां बड़ी घनी बस्ती थी, रहते थे। उन्होंने दो छोटे कमरे किराए पर ले रखे थे। खाना वह अपने हाथ से बनाते थे और चौका-बर्तन भी अपने हाथ से करते थे। महरी रखने की गुंजाइश भी उनके पास नहीं थी। पर मुझे वह बड़े आदर से रखते थे। और-और मदों में खर्च कम करके मेरे लिए अच्छी साड़ियां लाते थे, गहने भी यथाशक्ति अच्छे गढ़वा दिए थे। मुझे कोई भी काम नहीं करने देते थे। पर इससे क्या मेरा मन भर सकता था! एक तो बूढ़ा पति, तिसपर बुद्धू!

जिस मकान में हम लोग रहते थे, वह ऊपर-नीचे भाड़े-वालों से ठसाठस भरा था। मेरे पति को सभी लोग मनोविनोद के लिए पहले से ही खूब बनाया करते थे, अब जब वह 'नई दुलहन' लेकर रहने लगे तो मसखरों की बन आई। 'चचा, चचा' कहके वे लोग बाहर के कमरे में गुल मचाया करते थे। पर केवल परिहास के लिए नहीं, अब बहुत से लोगों के आगमन का कुछ दूसरा ही उद्देश्य था। मेरे पति के काम से लौटकर घर पर आते ही वे लोग दर्जनों की ताइाद में हमारे यहां आकर घंटों तक धरना दिए बैठे रह जाते और मजाक उड़ाते रहते। मैं भयभीत होकर चुपचाप अपने कमरे में दुबकी बैठी रहती और अपने भाग्य को कोसती और माता-पिता तथा अपनी प्यारी बहनों की याद में रोती।

पर धीरे-धीरे मेरा संकोच हटने लगा और कौतूहल बढ़ने लगा। मैं चिक की आड़ से नवयुवकों का जमघट देखती। उनमें एक विशेष व्यक्ति के प्रति मैं आकर्षित-सी होने लगी। वह खत्री था। मैं उसकी विधवा बहन कमला को, जो उम्र में मुझसे केवल तीन-चार साल बड़ी थी, जानती थी। कमला ने पहले ही दिन मुझसे घनिष्ठता जोड़ ली थी। उस युवक का नाम जगमोहन था। उसकी अवस्था बाईस वर्ष के करीब होगी। वह देखने में सुंदर और हंसमुख था। बीच-बीच में उसकी गज़लों की तान भी मैं सुनती थी। एक दिन दोपहर के समय मैं कमला के साथ अपने कमरे में बैठी थी। कमला मुझे काढ़ने का काम सिखा रही थी। अचानक जगमोहन 'कमला, कमला' पुकारता हुआ वहां आ उपस्थित हुआ। पहले तो मैं समझी कि वास्तव में वह किसी आवश्यक कार्य के लिए कमला को बुलाने आया है। पर जब उसने कमला से कहा—"क्या चची को काढ़ना सिखा रही हो?" तो मैं समझ गई कि वह किसी बहाने से मुझे देखने आया है। मैं घूंघट काढ़ने लगी। पर कमला मेरा घूंघट हटाते हुए बोली—"भैया के सामने तुम्हें लज्जा किस बात की? वह जैसे मेरे भैया हैं, वैसे ही तुम्हारे भी तो हैं!" मैंने मन-ही-मन मुसकराकर कहा—"नहीं, वह मेरे 'भतीजे' हैं।"

इस तरह धीरे-धीरे जगमोहन के आगे मैंने परदा करना छोड़ दिया। मैं यह

कहना भूल गई कि जिस मकान में मैं रहती थी, जगमोहन के पिता ही उसके मालिक थे। वह शहर के एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। जगमोहन बेकार बैठा रहता था। उस दिन से वह प्रायः नित्य दोपहर के समय मेरे यहां आने लगा। कमला के सामने भी वह मुझसे एक-आध हलका मजाक करने में नहीं झिझकता था। आश्चर्य की बात यह है कि कमला अपने भाई की हरकतों से लज्जित होने के बदले प्रसन्न होती थी। जब वह आता तो मैं उसे पान लगाकर देती। उसकी धृष्टता दिन-दिन बढ़ने लगी और मैं भी फिसलने लगी। आज तक मैंने जैसा जीवन बिताया था, उसकी प्रतिक्रिया आरंभ हो गई। एक दिन कमला हम दोनों को कमरे में अकेली छोड़कर बाहर से दरवाजा बंद करके चली गई। पाठकों को इस बात पर यकीन नहीं होगा, पर मैं यथार्थ बात लिख रही हूं। भाई के संबंध में नवेली विधवा की इस करतूत पर मुझे स्वयं आश्चर्य होता था और आज भी होता है। कुछ भी हो, जगमोहन ने इस एकांतावस्था में अवसर पाकर मुझे पूर्णतः कलंकित कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि इस कलंक में बहुत-कुछ अंश में मेरी भी रजा थी। पर मैं तो समाज के अत्याचार से पीड़िता अतृप्तकामा अनभिज्ञा नवेली थी! और उसे संसार का अनुभव बहुत-कुछ हो चुका था। क्यों उसने मुझ अभागिनी को अपने जाल में फंसाया?

कुछ भी हो, इस घटना के कुछ ही समय बाद एक दिन मैं रात के समय जगमोहन के साथ भाग गई। हम दोनों दिल्ली में आकर रहने लगे। जगमोहन अपनी मां के बकसे से छः-सात सौ रुपए चुरा लाया था। हम दोनों एक होटल में रहने लगे। चार महीने बड़े ऐश आराम से बीते। मैं जगमोहन को जी-जान से प्यार करती थी, और सच पूछा जाय तो मुझे अपने पति को छोड़कर धर्मच्युत होने का बिलकुल भी खेद नहीं हुआ। मैं उसी को अपना पति, उसी को अपनी गति समझती थी और यदि वह मुझे जीवन-भर अपने साथ रखता तो अंत समय तक मैं अपने नारी-जीवन को सार्थक समझती। पर केवल काम-लालसा के दास पुरुष स्त्री की आत्मा के इस सर्वत्यागी प्रेम के महत्त्व को क्या समझे! जगमोहन की उन्मत्त कामाग्नि चार महीने के साहचर्य के बाद शांत हो गई और उसके पास रुपये का भी अभाव होने लगा। उसे इस बात के भी चिह्न दिखाई दिए थे कि मेरे गर्भ रह गया है; इसलिए वह और भी घबराया। हाय रे कापुरुष पुरुष जाति! मेरे प्रति उसका व्यवहार दिन-दिन रूखा होने लगा, यहां तक कि, मैं स्पष्ट देख रही थी, वह मुझसे घृणा करने लगा था। एक दिन मैंने उसके हाथ एक दैनिक पत्र देखा। उसमें उसके पिता ने विज्ञापन छपवाया था जिसमें उन्होंने बड़ी करुण भाषा में अपने लड़के से घर वापस आने की प्रार्थना की थी और लिखा था—तुम्हारी अम्मां की आंखें रोते-रोते फूटने को हो गई हैं। मैं स्थिति की यथार्थता समझने लगी और मेरा कलेजा धक् से रह गया।

एक दिन रात को किसी विकट स्वप्न के बाद सहसा नींद उचट जाने के कारण मैं दुःस्वप्न की स्मृति से भयभीत हो उठी। हृदय को ढाढ़स देने के लिए जगमोहन

को जगाना चाहा। पर मेरे भय और आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि पलंगपर जगमोहन नहीं है। धड़कता हुआ कलेजा लेकर बहुत देर तक उसका इंतजार करती रही। सुबह हो गई, पर वह नहीं दिखाई दिया। अपने को एकाकिनी असहायावस्था में पाकर मैं आतंकित हो उठी। मैंने होटल के मैनेजर से पूछा। पर वह भी कुछ नहीं जानता था। उसकी बात से मालूम हुआ कि जगमोहन ने प्रायः एक महीने का बिल नहीं चुकाया है। मैनेजर मुझे डांटने लगा। बोला—"यह सब तुम लोगों की मक्कारी है! यह चाल चलकर तुम दोनों मिलकर होटलवालों को धोखा देना चाहते हो! मैं पुलिस बुलाकर तुम्हें हाजत में रखूंगा!" मैंने बहुत समझाया, बहुत रोई, पर वह न पिघला। उसने सचमुच पुलिस को बुलवाकर मुझे उसके हवाले कर दिया।

मैं दिन-भर प्रायः जड़, अचेतन अवस्था में थाने में रही। पुलिस के कांस्टेबल, यहां तक कि स्वयं दारोगा मुझसे भद्दा परिहास करते रहे; पर मैं काठ की मूर्ति की तरह उस अंधेरी कोठरी में स्तब्ध बैठी रही। रात को पुलिस के कम-से-कम पंद्रह व्यक्तियों ने जो राक्षसी, नारकीय अत्याचार किया, उसका स्मरण करके इस समय भी मेरे सारे शरीर में रोमांच हो आता है। उफ्! मानवरूपधारी ऐसे पिशाच भी इस पृथ्वी पर वर्तमान हैं! मुझे वास्तव में आश्चर्य होता है कि उस घोर पाशविक, भीषण आतंकजनक वीभत्स अत्याचार को देखकर धरती रसातल की ओर धंस क्यों न गई! पृथ्वी माता ने कैसे एक अनाथा, परित्यक्ता, असहाया, गर्भवती षोडशी के शारीरिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विनाश का वह दृश्य सहन कर लिया?

कुछ भी हो, इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे मस्तिष्क में ज्वर का आक्रमण हो गया। मैं प्रलापग्रस्त हो गई और मुझे अपना होश नहीं रहा। दूसरे दिन सुबह मुझे जब अपना होश आया तो मैंने अपने को एक गली में पड़ा हुआ पाया। पुलिसवालों ने अपने पैशाचिक कर्म के फल से भयभीत होकर मुझे यहां डाल दिया होगा। मैं अभी तक ज्वर और शारीरिक यातना से पीड़ित थी और कराह रही थी। उजाला होते-न-होते मेरी चारों ओर तमाशबीनों की भीड़ लग गई। पर मुझे उठने की ताकत नहीं थी। अंत को एक सज्जन, जिनके बाल गर्दन से नीचे तक थे और दाढ़ी छाती तक थी, मुझे एक गाड़ी में बैठाकर अपने साथ ले गए। पीछे मुझे मालूम हुआ कि वह आर्यसमाजी हैं और एक अनाथालय के अध्यक्ष हैं। वह मुझे अनाथालय में ले गए और मेरी सेवा शुश्रूषा का काफी अच्छा प्रबंध कर दिया।

मेरा ज्वर दो-एक दिन में अच्छा हो गया। पर अब एक दूसरी बला आ उपस्थित हुई। मेरा गर्भपात होने लगा। मैं फिर बीमार पड़ गई। इस अवस्था में मैं प्रायः तीन सप्ताह तक अस्वस्थ दशा में पलंग पर पड़ी रही।

अनाथालय में रहकर मैं किसी तरह अपने पूर्व दुःख को भूलने की चेष्टा करने लगी, पर जगमोहन की विश्वासघातकता की याद आते ही पागल-सी हो जाती। किसी

भी उपाय से मैं इस दुःख को भूलना चाहती थी। अनाथालय की स्त्रियों में एक स्त्री बड़ी धृष्ट थी और देखने में साक्षात् भूतनी मालूम होती थी। पर मेरे प्रति उसने सदय व्यवहार दिखाया और रफ्ता-रफ्ता करके उसने मुझे कोकेन खाना सिखा दिया। न मालूम वह कहां से ले आती थी। रोज लाकर मुझे खिलाती। इसका असर यह हुआ कि मेरे शरीर के साथ-ही-साथ मन भी क्षीण होता चला गया और मन में जड़ता आ गई तो दुःखद स्मृतियों की अनुभूति भी कम होने लगी। नीति-अनीति की जो भावना मेरे मन में शेष रह गई थी वह भी जाती रही, तामसिक सुख-भोग की लालसा बढ़ने लगी और जीवित रहने की इच्छा भी प्रबल होती चली गई।

मैंने धीरे-धीरे इस बात पर गौर किया कि अनाथालय के अध्यक्ष महोदय ने अनाथ स्त्रियों द्वारा एक खासा व्यापार खोल रखा है। अधेड़ अवस्था वाले, पत्नीहीन, अन्धकामुक उनके पास आते थे। अध्यक्ष महोदय प्रत्येक से सौ-दो सौ रुपये लेकर किसी स्त्री से उसका 'विवाह' करवा देते थे। पर कुछ ही दिन बाद वह स्त्री लौटकर फिर उसी अनाथालय में उनके पास चली आती थी। वह फिर किसी दूसरे पुरुष को 'ब्याही' जाती थी, पर फिर वापस चली आती थी। ऐसे बहुत से विवाह मैंने अपनी आंखों देखे। अब मैं यह देख रही थी कि मुझे महाशयजी किसके हवाले करते हैं। यह स्पष्ट ही था कि वह मुझे किसी मोटे असामी के हाथ बेचना चाहते थे; क्योंकि मैं एक तो कमसिन थी, तिसपर रूपवती थी। हुआ भी वही। यह आसामी गांठ के भी मोटे थे और शरीर के भी। पर बुड्ढे हो चले थे। चांदनी चौक में उनकी मिठाई की एक बड़ी दूकान थी।

मैं पहले ही कह चुकी हूं कि कोकेन खाने से मेरा तीव्र अनुभूतिशील हृदय अब जड़ और कुंद बनने लगा था। अब मुझे बुरे-भले का कोई विचार नहीं रह गया था पर सांसारिक बुद्धि बढ़ गई थी। जब मैंने देखा कि यह बुड्ढा मालदार है तो तत्काल मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इसे नाज-नखरे से वश में करके इससे रुपये खसोटने में हर्ज ही क्या है? रुपये का महत्त्व अब मैं समझने लगी थी। मैंने सोचा कि मेरे पास धन हो जाएगा तो फिर अन्य सांसारिक सुख (जिनकी अब मुझे प्रबल इच्छा होने लगी थी) आप-से-आप मेरे पास उपस्थित हो जाएंगे।

कहना नहीं होगा कि बुड्ढा मुझे पाकर अपने को धन्य समझने लगा। मैं भी उसे रिझा-रिझाकर उसका सर्वनाश करने लगी। कुछ ही महीनों के अंदर मैंने कई हजार के गहने उससे बनवा लिये। इसके अतिरिक्त नकदी भी जमा करती चली गई। इसी दर्मियान एक नौजवान खूबसूरत मुसलमान के साथ मेरा प्रेम हो गया। वह सामने की दूकान पर बैठकर गजलें गाया करता था और मेरी ओर घूर-घूरकर देखता था। मैं पहले ही कह चुकी हूं कि जीवन के उलटे-सीधे चक्रों के फेर में पड़ने के कारण, कोकेन का नशा करने के बाद पापपङ्क में पूर्णतः डूब जाने की लालसा मेरे मन में प्रबल हो गई थी। मैंने सोचा—जब पाप में ही डूबना हो तो हिंदू और

मुसलमान में भेदभाव का ख्याल रखना निरी मूर्खता है; बल्कि हिंदू ने मुझे दगा दिया है। हो सकता है, मुसलमान अंत तक मेरा साथ दे। पर यह मेरा भ्रम था। कुछ भी हो, मैंने बुड्ढे हलवाई (अर्थात् अपने 'पति'!) की आंखों में धूल झोंककर, नौकरों को रिश्वत देकर उस मुसलमान युवक से प्रेम का नाता जोड़ लिया। बहुत दिनों तक यही चक्र चला। मैं उसके प्रेम में अंधी हो गई थी। अंत को एक दिन उसके प्रस्ताव के अनुसार मैं अपने गहने और रुपये लेकर उसके साथ भागकर मेरठ चली गई। मैं उसे यथाशक्ति आराम से रखने लगी। जब जितने रुपये मांगता, देती थी; उसकी सब आवश्यकताओं को पूरा करती थी। पर एक महीना भी पूरा न हुआ होगा कि एक दिन मेरा बक्स लेकर वह गायब हो गया। उस बक्स में मेरे बहुत से गहने थे और नकद रुपये सब उसी में थे। इस बात से मुझे बड़ा सदमा पहुंचा, पर मैं घबराई नहीं। पुरुष का नीच व्यवहार सहन करने की मैं आदी हो गई थी। मैंने यही गनीमत समझी कि वह मुझे मारकर मेरे शरीर के गहने उतारकर नहीं ले गया। एक गहना बेचकर मैं फिर दिल्ली वापस चली गई और वहां चावड़ी बाजार में जाकर रहने लगी।

बस, यहीं से मेरा वेश्या-जीवन प्रारंभ होता है। इसकी जड़ में पिताजी की दरिद्रता और विवाह-संबंधी सामाजिक कुप्रथा थी। हमारे समाज के पुरुषों की नीचता तथा नैतिक कायरता ने मुझे इस पङ्क में ढकेला। जगमोहन ने मुझे गर्भवती देखकर समाज के भय से भीत होकर मुझे असहायावस्था में त्याग दिया, अपने उत्तरदायित्व को एकदम भुला दिया। यदि वह मुझे न छोड़ता तो अपने बुड्ढे और बुद्धू पति के त्याग का कलंक मैं सहर्ष अपने सिर पर लेती, क्योंकि मेरी यह दुर्गति तो न होती जो आज इस नारकीय जीवन में हो रही है! फिर भी मैं उसे याद करती हूं, क्योंकि मैं उसे सचमुच हृदय से प्यार करती थी।

(*विश्वमित्र*, अगस्त, 1933)